Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 30-06-2021, Accepted: 15-07-2021, Published: 30-07-2021
Volume 2, Issue 2, 2021, Page No. 05-07

उषा प्रियंवदा के पचपन खंभे और लाल दीवारें उपन्यास में चित्रित भारतीय नारी

डॉ. अनूषा निल्मिणी सल्वतुर
वरिष्ठ प्रवक्ता, हिंदी विभाग, कॅलणिय विश्वविद्यालय, श्री लंका

सारांश
इसमें कोई संदेह नहीं कि उषा प्रियंवदा ने भी हिंदी की स्वातंत्र्योत्तर महिला कथाकारों में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है अर्थात आधुनिक उपन्यास साहित्य को समृद्ध करने में इनका योगदान विशिष्ट है। पुराने रीति–रिवाज़, संस्कार, सामाजिक बंधनों में जकड़ी भारतीय नारी आज हर क्षेत्र में न केवल पुरुष के कंधों में कंधा मिला रही है, बल्कि राजनीति, समाज, साहित्य आदि क्षेत्रों में उच्च पदों की अधिकारी बन गयी है। आधुनिक नारी की मनस्थिति, पारिवारिक जीवन में पति–पत्नी के संबंध आदि विषयों को लेकर अनुभव के सीमित दायरे के अंतर्गत साहित्य रचना जिन महिला कथाकसरों ने की है, उनमें उषा प्रियंवदा का नाम हिंदी साहित्य जगत में उल्लेखनीय है। उषा प्रियंवदा की रचनाओं का प्रमुख कथ्य नारी मन की आलोचना है। विचारकों के कथनानुसार उसके पीछे प्रकट सामाजिक उद्देश्य भी है। नारी के विविध स्वरूपों को अनावृत्त करके उसके जीवन की समस्याओं की ओर वे अपनी दृष्टि डालती हैं, अर्थात तत्कालीन संघर्षमय जीवन के विभिन्न संदर्भों में नरी के अधिकारों के लिए लड़ने की सामर्थ्य उषा प्रियंवदा के रचना व्यक्तित्व की विशेषता है। भारत में निवास करनेवाली आज की नारी और भारत के बाहर जाकर विदेश में रहनेवाली भारतीय नारी, इन दोनों के जीवन यथार्थ से उनका परिचय है। क्योंकि जीवन के प्रारंभिक वर्ष भारत में बिताये हैं, और जीवन का अधिकांश भाग अमेरिका में एक प्रवासी के रूप में बिताये हैं। फलतः उनकी सभी रचनाएँ नारी अस्मिता का प्रामाणिक लेखन हैं। अतः आज के नारी जीवन की विभिन्न विसंगतियों का चित्रण करने में वह सफल हुई हैं।
उषा प्रियंवदा उसी प्रकार की एक लेखिका हैं जिनकी रचनाओं का संसार स्त्री–पुरुष के संबंधों एवं उनके मानसिक संघर्षों से संबंधित है। स्वतंत्रता के बाद हिंदी उपन्यास को नयी दिशा देने में उषा प्रियंवदा का अनुपम योगदान रही है। एक महिला लेखिका होने के नाते उन्होंने उपने अनुभवों के आधार पर आज की नारी की सामाजिक नियति तथा मानसिकता को बड़ी गहराई से अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। उनके उपन्यासों में खूब पढ़ी–लिखी नारी हैं, नौकरी करनेवाली नारी है, मध्यवर्गीय नारी की त्रासदी है तथा पारिवारिक समस्याओं से चक्कर लगानेवाली नारी भी हैं। उन्होंने परिवर्तित संदर्भ, नयी परिस्थितियों तथा अलसतापूर्ण मनःस्थितियों में पड़नेवाले नारी का वर्णन किया है। साथ ही अपनी रचनाओं में आधुनिक तथा भारतीय संस्कारों के मध्य के सूक्ष्म द्वन्द्व की सफलतापूर्वक चित्रिण किया है। इस प्रकार हिंदी की अन्य लेखिकाओं के बीच में उषा प्रियंवदा का स्थान महत्वपूर्ण है। वे साठोत्तरी हिंदी कथा साहित्य में एक नव जागरण लेकर आयी तथा उन्होंने हिंदी महिला लेखिकाओं में अपना अलग स्थान भी प्राप्त किया है।

मूल शब्दः स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकार, आधुनिक उपन्यास साहित्य, भारतीय नारी, नारी अस्मिता, नव जागरण

प्रस्तावना

पचपन खंभे लाल दीवारें (1961) उषा जी का सर्वप्रथम उपन्यास है। इसमें सुषमा नामक भारतीय नारी की सामाजिक, आर्थिक विवशताओं से जन्मी मानसिक यंत्रणा का बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। वह जिन परिस्थितियों में है, उनके बीच जीना ही उसकी नियति है। लेखिका ने इस स्थिति को बड़े ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित किया है।
लेखिका ने नारी शोषण के नये आयाम को यहाँ उद्घाटित किया है। इस उपन्यास की नायिका सुषमा, हॉस्टल का वार्डन है। अध्यापिका के पद पर कार्यरत है। अपाहिज पिता की पुत्री पर परिवार का पूर्ण उत्तरदायित्व है। वह नील से प्यार करती है। परिवार के प्रति प्रतिबद्धता के कारण वह अपने निजी सुख का त्याग करती है। आधुनिक अध्यापिका होने के अतिरिक्त उसके चारों ओर दीवारें हैं, सामाजिक दायित्व की, मानसिक कष्ट की, पद की, गरीमा की, पारिवारिक प्रतिबद्धता की। वह निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है। फिर भी भारतीय संस्कारों का प्रभाव नायिका में दृष्टिगत होता है। नायिका ने अपनी इच्छाओं तथा आकांक्षाओं का त्याग अपने परिवार के लिए किया है। यह उपन्यास अंतर्मुखी, कुंठित, स्वतंत्रता और कर्त्तव्य के बीच छटपटाती भीरू सुषमा की करुण कहानी है। वह पक्षागात से अशक्त पिता की सबसे बड़ी संतान है। पूरे परिवार के पालन का एकमात्र साधन वह है। घर, माँ–बाप तथा भाई–बहनों के लालन–पालन एवं शिक्षा की चिंता से उसके यौवन के वर्ष बीतते चले जाते हैं। कभी वह अपने माँ–बाप को तो कभी परिस्थितियों को दोष देती, वह लड़कियों के हॉस्टल में वार्डन पद को सँभालती है। नील अपने हृदय का सच्चा प्यार और उसके परिवार की सारी ज़िम्मेदारियों को उठाने के आश्वासन के साथ उससे विवाह का प्रस्ताव रखता है। किंतु सुषमा अपने में परिस्थितियों से लड़ने की शक्ति नहीं संजोपाती और आत्म पीड़न से जलती रहती है। लोगों के उँगली उठाने तथा नौकरी टूट जाने के भय से वह नील से अलग होना चाहती है। अंत तक उसके भीतर का तूफान, उसे उन्हीं पचपन खंभों और लाल दीवारों वाले हॉस्टल में टिके रहने को बाध्य करता है। यह अपने मन को समझाती है, "जीवन में बहुत महत्वपूर्ण काम है सिर्फ विवाह ही तो नहीं।"

अध्ययन क्षेत्र

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' शीर्षक का उच्चारण होते ही मानसपटल पर एक ऐसी सोच आ जाती है कि यह किसी भव्य इमारत के बारे में कह रही है, जिसमें पचपन खम्भे और लाल दीवारें हैं। उषा प्रियंवदा ऐसी लेखिका है जिन्होंने समाज के हर परिस्थिति को परख–परख कर अपने लेखन में प्रस्तुत किया है। इसीलए उपरोक्त शीर्षक हमें सोचने को बाध्य कर देता है कि पचपन खम्भे और लाल दीवारें आखिर किस

परिस्थिति को दर्शा रहा है। छात्रावास के पचपन खम्भे और लाल दीवारें उन परिस्थितियों के प्रतीक हैं जिनमें रहकर सुषमा को ऊब, घुटन तथा एकाकीपन का तीखा एहसास होता है, लेकिन फिर भी वह उनसे मुक्त नहीं हो पाती, उन परिस्थितियों के मध्य जीना ही वह अपनी नियति समझती है। उपन्यास के दूसरे पृष्ठ में ही लेखिका अपने मुख्य नारी पात्र की मनःस्थिति का वर्णन प्रकृति के भयावह वातावरण के साथ प्रस्तुत करती है जिससे उसके अंधकारमय जीवन का सही परिचय मिलता है–

'टहनियों और पत्तों का मंद स्वर में वर्तालाप, दूर बजते रात के घंटे, चौंककर जागे किसी पक्षी का आर्त्त चीत्कार! सुषमा को लगा कि उसके प्राणों और रात्रि की आत्मा में घना साम्य है।...' पृ. 09

हर स्त्री चाहती है कि वह समाज उसके संकट में साथ हो तथा खुशी में उसके साथ मुस्कुराए। सुषमा को अपने जीवन में उसके एकदम विपरीत स्वभाव में जीना पड़ रहा है। समाज की तो क्या, दिल के जो अपने हैं, वे भी उसके जीवन की हरखुशी को छींन लेने में तत्पर रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में भी वह, अपनों की खुशी, भलाई के लिए अपने पूरे जीवन को न्यौछावर कर देती है। उषा प्रियंवदा ने इस उपन्यास में जैसे समाज तथा मानव दोनों को आमने–सामने एक प्रतिद्वन्द्वी की तरह खड़ा कर रखा है। सुषमा के भीतर एक अंतर्द्वन्द्व चल रहा है, एक तरफ उसे अपने परिवार की चिंता है, क्योंकि सुषमा ही उस परिवार का एकमात्र साहस है, दूसरी तरफ वह 'नील' के हाथों में अपनी ज़िन्दगी की डोर सौंप देना चाहती है। समाज के सामने अकसर मानवमन को बलि चढ़ाना ही पड़ता है। उसी प्रकार सुषमा को भी अपने मन के साथ समझौता करना पड़ता है। नील के जीवन से सदा के लिए विदा होने पर सुषमा के मन में सुनसान सड़क के समान सन्नाटा छा जाता है, वह चाहती है कि नील को रोके, लेकिन अदृश्य मर्यादाओं ने उसका जीना अवरुद्ध कर दिया है। सामाजिक मर्यादाओं का प्रभाव स्त्री पर किस प्रकार पड़ता है, उसके लिए जीवित उदाहरण उषा जी के शब्दों में ही प्रस्तुत है–

"...वह कितनी अदृश्य मर्यादाओं में बँधी है, यह वह नील को कैसे समझाए?..." पृ. 30

दूसरी ओर लेखिका, सुषमा की मौसी के मुँह से समाजिक संबंधताओं की सहजता या यथार्थता का आभास दिलवाती है–

"...कुछ अपने बारे में भी सोचा सुषमा! यह भाई–बहन किसी के नहीं होते। सब अपने–अपने घर के होंगे। आज की दुनिया में कौन किसका होता है।..." पृ. 15

वस्तुतः आलोच्य उपन्यास में सुषमा का चरित्र, महान व्यक्तित्व वाली नारी के रूप में चित्रित किया गया है। वह अपने परिवार वालों के प्रति यद्यपि कर्त्तव्य मात्र तक नहीं निभाती, तथापि आत्मीयता का प्रदर्शन करती है–

"...मैं जो करती हूँ, कर्त्तव्य समझकर नहीं मौसी, उनके प्यार में करती हूँ। मेरा मन होता है कि मेरे पास अगर और कुछ होता तो और भी करती।..." पृ. 15

दूसरी ओर, नील की स्मृतियों को सुषमा भुला नहीं पाती, नील भी सच्चे दिल से सुषमा के साथ जीवन यापन करना चाहता है, चार से पाँच बार नील सुषमा के 'ना' कहने पर भी उससे मिलने आता है, और सुषमा के जवाब 'हाँ' में सुनना चाहता है। लेकिन अपने मर्यादाओं में बँधी सुषमा, नील से विवाह करने के लिए अर्थात उस रंगीन दुनिया में पैर रखने की अगणित आशा लिए हुए भी 'हाँ' नहीं कह पाती, सुषमा को पता है कि नील के बिना उसका जीवन निरर्थक है, फिर भी अपने जीवन की ज़िम्मेदारियों के कारण नील के प्रस्ताव को इन्कार करती है–

"...पहली बात तो नील यह है कि मेरी बहुत ज़िम्मेदारियाँ हैं। तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है। पक्षाघात से पीड़ित बाबू, दो बहनें और भाई, सब मुझे करना है..." पृ. 134

"...यह कॉलेज, ये खम्भे, मेरी डेस्टिनी हैं, मुझे यही छोड़ दो।..." पृ. 135

उषा जी का अधिकांश कथा नायिकाओं की तरह 'सुषमा' यद्यपि आधुनिक एवं आत्मनिर्भर है तथापि उसका जीवन–संघर्ष समाप्त नहीं होता। वह इस क्रूर समाज में शोषित होने के लिए विवश है। उसका शोषण घर एवं कार्यक्षेत्र दोनों स्थानों पर होता है। वह हॉस्टल की वोर्डन है तथा पूरे हॉस्टल को अपने नियंत्रण में रखती है, किंतु अपनी माता के विचारों पर नियंत्रण नहीं कर पाती, अर्थात उनके द्वारा घर में ही शोषित की जाती है। माँ के स्वार्थीपन तथा सुषमा की निःसहायता के लिए निम्न उद्धृत गद्य खंड सही उदाहरण हैं–

तैंतीस वर्ष की सुषमा के भविष्य–जीवन की बात छोड़कर माँ, उसकी बहन नीरू की शादी की बात लेकर उसको परेशान करती है–

"...अगर उन्होंने पसन्द कर लिया तो कल ही उन्हें कुछ लेना–देना होगा। कुछ रुपयों का इन्तज़ाम कर लेना। शादी मैं फरवरी तक कर दूँगी।..." पृ. 96

"...तुम न हो तो मैं पागल हो जाऊँ बिट्टो!..." पृ. 96

"...तुम्हारे पास तो सबकुछ है। ये दोनों भी अपने घर जाएँ, सुख से रहें, अपने मन का खाएँ, यही चाहती हूँ।..."

दूसरी तरफ सुषमा का शानदार जीवन भी माँ को खटकता है–

"...तुम बहुत फिजूलखर्च होती जा रही हो। ज़रा हाथ दबाकर खर्च किया करो। नीरू की शादी भी करनी है।..." पृ. 18

"...आखिर इतनी गृहस्थी फैलाने की क्या ज़रूरत क्या है सुषमा? भौंरी को निकाल दो और हॉस्टल के नौकरों से काम करवाओ। हॉस्टल में कुरसी–मेज़ेंब ने तो घर के लिए कुछ सामान बनवा लो। पलँग है, अल्मारी, खाने की मेज़े– सब देने के काम आएगा–इतनी जमीन बेकार पड़ी है, साग–सब्जी लगवाओ।..." पृ. 101

सुषमा अपने परिवार के प्रति सभी कर्तव्यों का निर्वाह निष्ठापूर्वक करती है, अपने छोटे भाई–बहनों को पढ़ाती है, बहनों का विवाह करा देती है, किंतु स्वयं के अधिकारों का प्रयोग नहीं कर पाती। सुषमा ने जीवन में अपनों के प्रति जो कुछ कर्त्तव्य निभाया है, वे भी माँ के उन शब्दों ने निरर्थक कर दिया है। वह अपनी विवशता को सभाँलने प्रत्युत्तरवश माँ से कटु बात तो कहती, फिर भी, तब तक वह माँ की दृष्टि में दोषी बन चुकी होती।

"...बहुत कुछ किया ज़िन्दगी में, यह बेईमानी नहीं की, लगता है, तुम्हारे बाल बच्चों की खातिर यह भी करना पड़ेगा।..." पृ. 101

'सुषमा की माँ' इस डर से ही 'नील' से उसका विवाह नहीं होने देती कि कहीं ये 'सोने की चिड़िया' हाथ से न निकल जाए। एक ओर वह नीरू का विवाह नील से करवाने की सूक्ष्म जाल बिछाने की कोशिश में है, दूसरी ओर बिना लक्ष्य करके सुषमा से उपदेश भरी बातें करती है, जिससे घर में परिस्थितिवश शोषण होनेवाली सुषमा के जीवन की दयनीय दशा का आभास मिलता है–

"...तुम समझदार हो, कभी ऐसा कुछ न करना जिससे किसी को कुछ कहने का अवसर मिले। तुम्हारी वजह से अभी हम चार जनों सिर ऊँचा करके रह रहे हैं...।" पृ. 109

एक बार सुषमा की शादी के संबंध में रिश्तेदार द्वारा पूछे जाने पर उसको टालती हुई कुछ ऐसी बातें करती है, जो एक कर्तव्य–परायण माँ होने पर भी शोभा नहीं देती–

"...सुषमा की शादी तो अब हमारे बस की बात रही नहीं। इतना पढ़–लिख गयी, अच्छी नौकरी है और अब तो क्या कहने हैं, होस्टल में वार्डन भी बनने वाली हैं। बँगला और चपरासी अलग से मिलेगा, बताओ, इसके जोड़ का लड़का मिलना तो मुश्किल ही है।.." पृ. 13

इस प्रकार नीरू के विवाह के अवसर पर उपस्थित अतिथि लोगों के आपस की बातों में भी सुषमा और नील का संबंध तुड़ने वाली बात को संकेत मिलता है। उन्हें भी किसी के साथ सुषमा का संपर्क बनना अच्छा नहीं लगता था। जिससे ऐसा प्रश्न मन में उठता है कि क्या

उनके भावी जीवन का निर्णय केवल समाज ही ले सकता है? क्या उसका अपना कोई अधिकार नहीं?–

"नील से संबंध तोड़ उसने समझदारी का काम किया है। सुषमा भली युवती है, उसकी ज़िम्मेदारियाँ हैं। अभी ही उसने अपने प्राइवेट फन्ड से ऋण लेकर छोटी बहन के विवाह का प्रबंध किया है। इस आयु में ऐसे बचकाने रोमांस नहीं सोहती।.." पृ. 142

उक्त बात की पुष्टि करते हुए लेखिका, उषा जी 'सुषमा' के मुँह से जो कुछ कहलवाती है, उससे उसके जीवन पर होने वाले सामाजिक प्रभाव की स्पष्ट झलक मिलती है–

"मैंने ठीक किया न मीनू, देखो नील ने कितने दिन से कोई खबर नहीं ली। अब तो सबके दिलों में ठंडक पड़ गयी होगी। मिस शास्त्री को चैन की नींद आती होगी।" पृ. 143

नील और सुषमा के मिलन का एक साधारण फल भी दुनिया के सामने परिहास का विषय बन जाता है, जिसका अंकन उषा जी अपने शब्दों में ही करती हुई कहती हैं–

"...जो कुछ उसके लिए अमूल्य और स्वर्गिक था, दुनिया की आँखों में वह कितना सस्ता और उपहासास्पद बन गया था!" पृ. 120

एक बार सुषमा की सहेली, 'मीनाक्षी' के शब्दों में, जिस सामाजिक इकाई में वे रह रही हैं, उस वातावरण का स्वभाव भी उषा जी पाठकों के समक्ष रखती हैं–

"...यहाँ किसी का जीवन व्यक्तिगत नहीं, वह एक खुली पुस्तक है।" पृ. 66

वस्तुतः आलोच्य उपन्यास की 'सुषमा' एकाकी नारी जीवन की प्रतीक है। उस चरित्र में एक तरफ नारी मुक्तिवाद की झलक दिखाई पड़ती है। उसका स्वतंत्र चिंतन भी उपन्यास के कई स्थानों में दिखाई पड़ता है, जो उसकी अंतरात्मा की पहचान में उल्लेखनीय जान पड़ता है–

"...आपके सामाजिक मापदंड यह कहते हैं कि आप सबके सामने किसी के व्यक्तिगत जीवन की धज्जियाँ उड़ा दीजिए? हरेक का जीवन एक ऐसा अनुलंघनीय दुर्ग है जिसका अतिक्रमण करना किसी का अधिकार नहीं है।..." पृ. 36

"...जब हम फूल की पंखुड़ियाँ नोचकर फेंक देते हैं तब फूल को कैसा लगता होगा, मैं अब समझ पायी हूँ। उन नुची पंखुड़ियों के ढेर पर मैं बैठी हूँ।..." पृ. 149

"...मेरी निष्कृति की कोई सम्भावना नहीं मीनाक्षी। पैंतालीस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता या बिल्ली पाल लूँगी–उसे सीने से लगाकर रखूँगी। बात यह है मीनाक्षी कि मैं नहीं चाहती कि जो कुछ मैंने देखा और सहा, वही मेरे भाई–बहनों के सामने आए।..." पृ. 128

जीवन में विवाह की कमी होने पर भी विवाह के प्रति उसकी धारणा अलग मालूम पड़ती है जिसमें उसके स्त्री–स्वातंत्र्य की भावना का आभास मिलता है–

"...जीवन में बहुत महत्वपूर्ण काम हैं, सिर्फ विवाह ही तो नहीं। और देशों में देखिए, बिना शादी किये ही औरतें कैसे मज़े से रहती हैं।..." पृ. 14

इस प्रकार उषा जी ने सुषमा के द्वारा अधिक आयु वाली, अविवाहित युवतियों की समस्या को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष

वस्तुतः आलोच्य उपन्यास में घटित सभी घटनाओं को परखने से हम यही निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उषा जी ने समाज द्वारा निर्धारित नारी–मूल्यांकन के मापदंडों को नकारकर समाजगत आयामों से निरपेक्ष नारी को स्वतंत्र चेतना, एवं व्यक्तित्व सम्पन्न, जागरुक व प्रबुद्ध नारी के रूप में देखा है। इन्होंने अपने कथा साहित्य में बाह्य सामाजिक परिस्थतियों व नारी के अंतर्जगत के मध्य जो सूक्ष्म द्वन्द्व है, उसे उभारा है। भारतीय समाज की स्थिति एवं उसके परिवेश में नारी के संघर्षमय जीवन को चित्रित कर नवीन मूल्यों की स्थापना की है।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, साधना (1995) वर्तमान हिंदी महिला कथा–लेखन और दाम्पत्य जीवन, नयी दिल्ली, वाणी प्रकाशन।
2. आरजू, मोजम्मिल हसन (1993) भारतीय महिला एवं आधुनिकीकरण, नयी दिल्ली, अजय शर्मा कॉमन वेल्थ पब्लिकेशन।
3. उपाध्याय, रमेश (2004) आज का स्त्री आन्दोलन, दिल्ली, शब्द संधान प्रकाशन।
4. कपूर, प्रमिला (1976) कामकाजी भारतीय नारी, दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज।
5. खेतान, प्रभा (2006) उपनिवेश में स्त्री, दिल्ली, वाणी प्रकाशन।
6. गुप्ता, रमणिका (1995) आधुनिक महिला लेखन, हज़ारीबाग, नवलेखन प्रकाशन।
7. जैन, प्रतिभा और शर्मा, संगीता (1998) भारतीय स्त्रीः सांस्कृतिक संदर्भ, जयपुर, रावत पब्लिकेशन।
8. टंडन, प्रतापनारायन (1964) हिन्दी उपन्यास में कथा–शिल्प का विकास) लखनऊ हिन्दी साहित्य भंडार) लखनऊ।
9. देसाई, मीरा (1982) भारतीय समाज में नारी, दिल्ली, मैकमिलन प्रकाशन।
10. प्रियंवदा, उषा (2009) पचपन खंभे लाल दीवारें, नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
11. मधुसंधु, डॉ. (2000) महिला उपन्यासकार, दिल्ली, निर्मल पब्लिकेशन।
12. शुक्ल, उमा (2009) भारतीय नारी अस्मिता की पहचान, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन।